ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 1
December 2016

साहित्य संहिता

Available at http://sahityasamhita.org/

हिन्दी साहित्य की जातीय परम्परा और डॉ.रामविलास शर्मा

डॉ०आनन्द कुमार यादव

नाम -डॉ०आनन्द कुमार यादव **शिक्षा**- एम.एससी., बी.एड.,एम.ए.,पीएच.डी.(NET)

संप्रति - सहायक समन्वक(अध्यापक) BRC कमासिन, बांदा (उ०प्र०) 210125

जातीय परम्परा की पहचान उस साहित्य से होती है जो रूढ़िवादिता और स्थितिशीलता के विरुद्ध संघर्ष करके अपनी पहचान बनाता है। डॉ. शर्मा ने 'त्रिलोचन : आधुनिकता और परम्परा बोध' शीर्षक पर अपने लम्बे लेख में 'जातीय परम्परा' को इस प्रकार परिभाषित किया है–'जिस समाज में अनेक वर्ग हों, रहन–सहन और व्यवहार के अनेक स्तर हों, उसमें साहित्य की परम्परा भी अनेक होती है। मोटे तौर पर जैसे एक दरबारी परम्परा, दूसरी गैर दरबारी परम्परा। इनमें जो परम्परा किसी जाति के सांस्कृतिक विकास में सहायक होती है, उसे हम जातीय परम्परा कहते हैं।' डॉ. शर्मा दरबारी परम्परा के काव्य को हिन्दी जाति के सांस्कृतिक विकास में सहायक नहीं मानते। इसीलिए उसे हिन्दी की जातीय परम्परा का काव्य भी नहीं मानते। इसी सन्दर्भ में वे आगे कहते हैं–''दरबारों से बाहर हमारे यहाँ भक्ति–साहित्य की परम्परा है और उसके साथ, भक्ति से अलग हटकर, रहीम जैसे कवियों की धारा है। इन लोगों को मिलाकर हम उसे लोकजागरण की धारा कहते हैं। भारतेन्दु युग में प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट जैसे लोगों ने, आगे चलकर प्रेमचन्द और निराला जैसे लेखकों ने साहित्य की सामन्त–विरोधी धारा को आगे बढ़ाया। साहित्य की जातीय परम्परा के निर्माता इन लेखकों का साहित्य ही नहीं, उनका जीवन–संघर्ष भी हमारे लिए प्रेरणा का स्रोत है, यह हम त्रिलोचन की कविता में देखते हैं।''[1]

डॉ. शर्मा भारतेन्दु–युग के नवजागरण को भक्तिकालीन लोकजागरण का विकास मानते हैं। भारतेन्दु–युग के कवि और साहित्यकार–बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र आदि–उसी प्रकार हिन्दी की जातीय परम्परा के निर्माता हैं जिस प्रकार भक्ति–काल के कवि कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि। भारतेन्दुकाल के बाद प्रेमचन्द और निराला इस परम्परा को आगे बढ़ाते हैं। भक्ति–काव्य के कवियों की भाँति इनका संघर्ष भी दुहरा है। एक ओर इन्हें साम्राज्यवादी शक्तियों से जूझना पड़ रहा है, दूसरी तरफ समाज में विद्यमान परम्परागत सामन्तीय रूढ़ियों से। यह स्थिति देश के स्वतंत्र होने तक बनी हुई है। प्रश्न यह है कि देश के स्वतंत्र होने के बाद हिन्दी की जातीय परम्परा को आगे बढ़ाने वाले रचनाकार कौन हैं? डॉ. शर्मा त्रिलोचन के मूल्यांकन के सन्दर्भ में ही इस प्रश्न का उत्तर देते हैं। वे 'आधुनिकता' का प्रश्न उठाते हैं। और पूछते हैं–'कवि त्रिलोचन आधुनिक हैं या नहीं? फिर स्वयं ही उत्तर देते हैं–'अवश्य हैं'। इसके बाद प्रश्न करते हैं–'क्या उसी तरह आधुनिक हैं जिस तरह 'नई कविता' के

ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 1
December 2016

साहित्य संहिता

Available at http://sahityasamhita.org/

रचनाकार हैं?' और स्वयं ही उत्तर देते हैं–'नहीं, उस अर्थ में नहीं हैं। इनकी आधुनिकता हिन्दी काव्य की जातीय परम्परा से जुड़ी हुई है।' इसका अर्थ यह हुआ कि देश के स्वतंत्र होने के बाद दो तरह की आधुनिकताओं का प्रचलन हुआ। एक वह जो हिन्दी काव्य की जातीय परम्परा से जुड़ी हुई है और दूसरी वह जो इससे विच्छिन्न है। इस विच्छिन्न परम्परा की ओर संकेत करते हुए कहते हैं–'नयी आलोचना नई कविता के साथ आगे बढ़ी, उसके मानदण्ड स्थिर करने वाले विजय देवनारायण साही आदि ब्रिटिश–अमरीकी आलोचना से मूल सूत्र उधार लेकर प्रगतिवाद के विरुद्ध मोर्चा जमा रहे थे। कुछ मार्क्सवादी लेखकों ने धीरे–धीरे कदम उठाते हुए उनका अनुगमन किया। यह सारा अभियान हिन्दी भाषी जाति की प्रगतिशील काव्यधारा से विच्छिन्न था।' निष्कर्ष यह कि 'नई कविता' और उसके साथ ब्रिटिश–अमेरिकी आलोचना से मूल सूत्र उघार चलने वाली नई आलोचना ने जिस 'आधुनिकता' को जन्म दिया वह हिन्दी काव्य की जातीय परम्परा से विच्छिन्न थी। इस सन्दर्भ में डॉ. शर्मा त्रिलोचन के कविता संग्रह 'उस जनपद का कवि हूँ' के आवरण पृष्ठ पर प्रकाशित केदारनाथ सिंह के अभिमत का हवाला देते हैं–''दरअसल वे आज की हिन्दी कविता में उस धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो आधुनिकता के सारे शोर–शराबे के बीच हिन्दी–भाषा और हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना की जड़ों को सींचती हुई चुपचाप बहती रही है।''[2] कहना न होगा कि यह शोर–शराबे वाली आधुनिकता वही है जो नयी कविता के प्रथम चरण में चर्चित हुई थी। त्रिलोचन की आधुनिकता इसको चुनौती देती हुई, हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना का प्रतिनिधित्व करती हुई प्रवाहित होती रही है। हिन्दी जाति की संघर्षशील चेतना को स्पष्ट करते हुए डॉ. शर्मा कहते हैं–हिन्दी जाति में पूँजीपति और जमींदार हैं, किसान मजदूर हैं और मध्यवर्ग के लोग हैं। संघर्षशील चेतना पूँजीपतियों और जमींदारों की चेतना अपनी समग्रता में 'निराला' के काव्य में बिम्बित है, त्रिलोचन के काव्य में बिम्बित है और केदारनाथ अग्रवाल तथा नागार्जुन के काव्य में विम्बित हैं। इस चेतना को बिम्बित करने वाला काव्य हिन्दी की जातीय परम्परा का काव्य है।

भक्ति–काल से आरम्भ होने वाली इस जातीय परम्परा का निरूपण करते हुए युग–विशेष के मुख्य अन्तर्विरोधों को ही महत्व देते हैं। गौण अन्तर्विरोधों को नहीं। उनकी दृष्टि से भक्ति–काल में मुख्य अन्तर्विरोध रीति और भक्ति में है। सामन्तीय रूढ़ियों और भक्तों द्वारा प्रतिपादित जनवादी मूल्यों में है। भक्ति–आन्दोलन को शूद्र और द्विज तथा हिन्दू और मुसलमान सभी ने मिलकर आगे बढ़ाया था। वे स्वीकार करते हैं कि इस आन्दोलन में शूद्र और द्विज का अन्तर्विरोध भी है किन्तु वह गौण है। जातीय परम्परा का मुख्य आधार पीड़ित और गरीब जनता है। अपनी महत्वपूर्ण कृति 'भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश' भाग–2 में वे 'निराला' की जातीय चेतना पर विस्तार से विचार करते हुए बलपूर्वक कहते हैं–''गरीब जनता भीतर से सुदृढ़ नहीं हो सकती। इसी तरह जब तक जाति–बिरादरी का भेद बना हुआ है, तब तक हिन्दी जाति भीतर से कमजोर बनी रहेगी।''[3]

परम्परा का मूल्यांकन करते हुए डॉ. शर्मा यह चिन्ता प्रकट करते हैं ''कि भारत के अन्य जातीय प्रदेशों की अपेक्षा हिन्दी प्रदेश के लोगों में जातीय चेतना का आभाव है। वह इसलिए नहीं कि इनमें देशभक्ति बहुत ज्यादा है, वरन् इसलिए कि जहाँ जाति–बिरादरी के बन्धन अब भी बहुत मजबूत हैं और जनपदीय अलगाव काफी हैं। इसके अलावा धार्मिक विद्वेष से जनता विभाजित है। साहित्य में हिन्दी–उर्दू का जैसा भेद है, वैसा भेद अन्य किसी प्रदेश में नहीं है और अंग्रेजी का एक गढ़ हिन्दी–प्रदेश भी है, जहाँ का शिक्षित वर्ग अपनी भाषा और अपने साहित्य के प्रति उदासीन रहा है और अपने अज्ञान पर गर्व भी करता है।''[4] डॉ. शर्मा का दृढ़ मत है कि जब तक हिन्दी जनता अपना रूपान्तरण नहीं करती। अपने को संगठित नहीं करती। तब तक उसका विकास संभव नहीं है।

ISSN- 2454-2695
Volume 02 Issue 1
December 2016

साहित्य संहिता

Available at http://sahityasamhita.org/

डॉ. शर्मा को 'जाति' की धारणा को चुनौती देने वाली विचारधारा का भी पता है। इस सन्दर्भ में वे श्री वेनेडिक्ट ऐंडरसन की पुस्तक 'इमैजिनड कम्यूनिटीज' का उल्लेख करते हैं। यह पुस्तक सन् 1983 ई. में प्रकाशित हुई है। श्री ऐंडरसन का मत है कि वास्तव में जाति का अस्तित्व नहीं होता। यह मन की कल्पना है जो मानव समुदायों पर आरोपित कर दी गई है। ऐंडरसन के अनुसार 'अनेक सांस्कृतिक उपकरणों के एक साथ मिल जाने से 18वीं सदी के अन्त की ओर इस धारणा का जन्म हुआ।' ऐंडरसन यह जानते थे कि 'इस धारणा से पूँजीवाद का गहरा सम्बन्ध है। डॉ. शर्मा का कहना है कि–''ऐंडरसन के सामने 18वीं सदी का औद्योगिक पूँजीवाद था। यदि वे 'घरेलू बाजार के निर्माण से जाति के निर्माण को जोड़ें तो उनको वास्तविकता स्वीकार करनी पड़ेगी।''[5] डॉ. शर्मा शेक्सपियर के नाटकों का हवाला देकर स्पष्ट करते हैं कि औद्योगिक क्रान्ति से बहुत पहले सोलहवीं सदी में अंग्रेज जाति और उसके साथ अंग्रेजी भाषा की धारणा विद्यमान थी। इस सन्दर्भ को आगे बढ़ाते हुए वे इटली की चर्चा करते हैं और ऐंगेल्स द्वारा लिखी कम्युनिस्ट घोषणा–पत्र के इटालियन संस्करण की भूमिका का हवाला देकर बताते हैं कि ऐंगेल्स ने पूँजीवाद द्वारा अतीत में निबाही गई क्रान्तिकारी भूमिका पर सन्तोष व्यक्त किया है–'पहली पूँजीवादी जाति इटली थी। सामन्ती मध्यकाल की समाप्ति और आधुनिक पूँजीवादी युग की शुरूआत पर वहाँ एक विराट पुरुष के दर्शन होते हैं, वह इटली के दान्ते है। वह मध्यकाल के अन्तिम कवि हैं और आधुनिक काल के प्रथम कवि।' डॉ. शर्मा इस कथन का आशय स्पष्ट करते हुए कहते हैं–''आशय यह है कि पूँजीवाद का विकास सबसे पहले इटली में हुआ और वहाँ इटालियन जाति का निर्माण हुआ। जिसे मध्यकाल कहते हैं वह सामन्ती व्यवस्था का समय है। दान्ते उससे जुड़े हुए हैं, लेकिन उससे आगे बढ़कर वे पूँजीवाद युग में प्रवेश करते हैं और अपने काव्य में नई चेतना भी प्रतिबिम्बित करते हैं। यह पूँजीवाद मशीनों से कारखानों में माल तैयार करने वाला पूँजीवाद नहीं है। औद्योगिक क्रान्ति अभी बहुत दूर है लेकिन इससे सदियों पहले इटली में जाति का निर्माण हो चुका है।''[6] इस प्रकार ऐंडरसन के मत का खण्डन करने के बाद डॉ. शर्मा उन भारतीयों का उल्लेख करते है जो ऐंडरसन के मत से जुड़े हैं। इनमें श्री रणजीति गुह अग्रणी हैं। श्री गुह का मानना है कि भारत में जिस राष्ट्रवाद का जन्म हुआ वह यहाँ उपनिवेशवादियों की प्रशासनिक सत्ता का परिणाम था। इस राष्ट्रवाद के तहत अतीत को नये सिरे से देखने का प्रयत्न किया गया। राष्ट्र का गौरवमय इतिहास होना चाहिए, इसलिए जहाँ गौरव नहीं था वहाँ भी गौरव की कल्पना की गई। यह केवल हिन्दुओं का गौरव था। इसलिए जिस राष्ट्रवाद का अभ्युदय हुआ वह हिन्दू राष्ट्रवाद था। इसके साथ भाषा और साहित्य में जो उन्नत्ति हुई, वह भी उपनिवेशवादियों की प्रेरणा का फल था। श्री गुह की इस स्थापना को प्रस्तुत करने के बाद डॉ. शर्मा उनकी विसंगतियों और अन्तर्विरोधों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं। वे कहते हैं–''रणजीत गुह जिस राष्ट्र की बात करते हैं, उसके अन्तर्गत बंगाल और बाकी सारा देश है। नेशन शब्द भारत और बंगाल के लिए प्रयुक्त हुआ है, इनमें स्पष्ट अन्तर नहीं दिखाई देता। बंगाल कोई निश्चित जातीय प्रदेश है या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर गुह के व्याख्यानों में नहीं है। भारत नाम का देश राष्ट्र है या नहीं, इस देश से बंगाल का सम्बन्ध किस तरह का है, इन प्रश्नों का उत्तर गुह के व्याख्यानों में नहीं है।''[7]

सन्दर्भ

1 संकल्प : समीक्षा दशक, पृ.206–207
2 संकल्प : समीक्षा दशक, पृ.206–207
3 डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश–2, पृ.595
4 डॉ. रामविलास शर्मा–परम्परा का मूल्यांकन, पृ.28
5 डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश–2, पृ.282
6 डॉ. रामविलास शर्मा–भारतीय संस्कृति और हिन्दी प्रदेश–2, पृ.283
7 वही....., पृ.285